विक्षिप्त वीणा

जानकीनाथ कौल 'कमल'

विक्षिप्त वीणा

जानकीनाथ कौल

विक्षिप्त वीणा

"सीमित स्वत्व से उठकर जब भावुक मन असीम में अपने आपको खो बैठता है तब साधारण जीवन की झांकी ही बदल जाती है। विचित्र भावनाओं से अनुभावित होकर यह (साधारण) मान विश्व-मानव बन जाता है, जो किसी असाधारण आनन्द की अनुभूति है। हृदय का प्याला जब इस अनुपम आनन्द से भर जाता है तब अवश्य इससे छलकन बाहर गिरने लगती है। इसी छलकन को लोक में 'कविता' का नाम मिला है। परन्तु यह मेरे निकट सुमधुर आनन्द के क्षण हैं।"

'विक्षिप्त वीणा' की यह कविताएं कवि के स्वयं अपने शब्दों में सुमधुर आनन्द के क्षण हैं। इसका प्रतिबिम्ब नूतन-साहित्य-संघ, लखनऊ से प्रकाशित 'अमर दीप' आलोक में जन-साधारण के लिए यों हैं—

"कश्मीर की सुरम्य घाटी में पैदा हुए कविवर 'कमलजी' के काव्य में भावनाओं की अल्हड़ मुस्कान तथा विरह-वेदना के दर्शन एक साथ होते हैं। संगीत को जीवन का आवश्यक तत्त्व मानते हुए कवि गेय एवं द्वन्द्व गीतों को लेकर ही अनवरत साधना पर बढ़ता जा रहा है। अनेक गीत पत्रिकाओं व काव्य-संकलनों में प्रकाशित हो चुके हैं। काव्य साधना के साथ-साथ आप व्यावहारिक जीवन में भी श्रीनगर में विद्यार्थियों को शिक्षा देने में रत हैं।"

SANT ... RESEARCH INSTITUTE
37/4 Pandoka Colony, Paloura Jammu-181121

विक्षिप्त वीणा

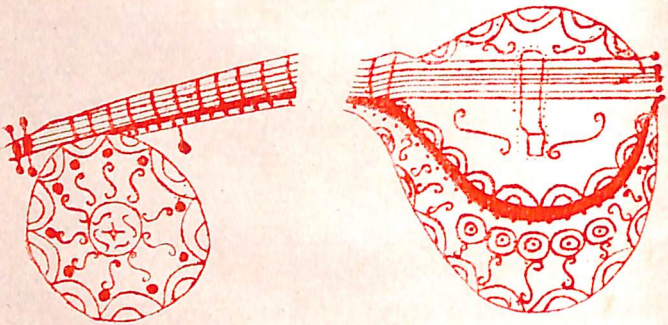

विक्षिप्त वीणा

जानकीनाथ कौल 'कमल'

दीपाक्षी प्रकाशन
1561, सैक्टर-28,
फरीदाबाद (हरियाणा)

प्रकाशक : दीपाक्षी प्रकाशन
1561, सैक्टर-28, फरीदाबाद (हरियाणा)

मूल्य : पैंतीस रुपये

प्रथम संस्करण : 1994

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस
शाहदरा, दिल्ली-110032

सम्मतियां

"कश्मीर की सुरम्य घाटियों में पैदा हुए कविवर 'कमल' जी के काव्य में भावनाओं की अल्हड़ मुस्कान तथा विरह वेदना के दर्शन एक साथ होते हैं। संगीत को जीवन का आवश्यक तत्त्व मानते हुए कविरव गेय एवं द्वन्द्व गीतों को लेकर अनवरत साधना पर बढ़ता जा रहा है।.....
.....काव्य-साधना के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन में भी श्रीनगर में विद्यार्थियों को शिक्षा देने में रत हैं।"

—'अमरदीप'

"मादकता मदिरा में है
कटुता में जीवन-रस है।
मेरी टूटी वीणा में
झंकार भरी नस-नस है।"

अनुक्रमिका

संख्या	कविता	पृष्ठ संख्या
१.	अनुपम यह तम्बूर	१३
२.	उद्‌गार	१५
३.	मेरा हारिल	१६
४.	मैं कौन हूं	१७
५.	मैं	१८
६.	देह में आत्मा यूं ठहरा	२०
७.	जग-जुलाहा	२२
८.	तुम और मैं	२४
९.	विधि-गति	२६
१०.	आंसू	२७
११.	कवि	२८
१२.	मन टूटा	३०
१३.	कौन गला अब जाऊं	३१
१४.	कल्लोल	३३
१५.	दुःखी-हृदय	३५
१६.	नवयुग से	३७
१७.	उर की व्यथा	३९
१८.	निर्झर	४१
१९.	एकान्त	४२

२०.	विरहिन	४३
२१.	परिवर्तन	४५
२२.	आज भर आते नयन क्यों	४६
२३.	मृत्यु ही वह गान क्या है !	४७
२४.	मृत्यु है कैसा खिलौना !	४८
२५.	आ बहन ! दिल खोल रो लें !	४९
२६.	मैं बराती साज सज कर	५०
२७.	मत मुझे मजबूर कर दो	५१
२८.	सुनहला धन सुख भरा है	५२
२९.	मित्र को पत्र	५३
३०.	रक्षा-बन्धन	५५
३१.	जीवन खेल	५६
३२.	प्रातः दृश्य	५७
३३.	क्या सुख भोगा इस जीवन से ?	५९
३४.	जागरण भी और मिलन भी	६०
३५.	कश्मीर में बसन्त का आगमन	६२
३६.	नया कश्मीर	६४
३७.	चिरनूतन	६६
३८.	बोल उठा	६७
३९.	यह न पूछो	६९
४०.	भारत-दिवस	७२
४१.	स्वतन्त्र भारत और हम	७३
४२.	मस्तानें	७५
४३.	मस्ती में झूमता हूँ	७७
४४.	उठ कर सवेरे	७८
४५.	मस्त यौवन	८०
४६.	प्रेम-विहार	७१
४३.	शान्ति-पाठ	८४

अपनी बात

विधि ने मेरी जीवन-वीणा को विक्षिप्त बना दिया है। इसके तार, कई तो हिल-मिल कर हैं और कई छिन्न-भिन्न। पता नहीं किस निक्कू-नक्षत्र ने इस मेरी वीणा से खेला है। इसकी झंकार अब भी सुरीली है परन्तु विक्षेपों से रहित नहीं। मेरी वीणा तो सुन्दर-सुडौल मुझे प्रतीत होती है परन्तु मयूर जिस भान्ति अपने चरणों की ओर दृष्टिपात करते ही अपने सुमधुर नृत्य को भूल, विकल होता है, ठीक उसी भान्ति मैं भी जीवन-वीणा की इन तारों को देखते ही, इसके मधुर सुरों को भूलकर व्याकुल हो उठता हूँ। यही व्याकुलता मेरी वीणा को विक्षिप्त बना देती है।

मुझे तो इसी में आनन्द है क्योंकि विक्षेपों के अन्तर इस झंकृत वीणा के तार मुझे इतना रस-मुग्ध कर देते हैं मानो संसार में इसके अतिरिक्त और किसी वस्तु की सृष्टि नहीं। विक्षिप्त-वीणा विश्व-वीणा बन जाती है। यही तो मेरे जीवन के अनमोल आनन्द की घड़ियां हैं। झंकार तो इस प्रकार है—

'वाणी की वीणा परे से
हृत्तार बजे जब मेरे
मेरे ही सुख-दुःख के ये
जग से थे साफ इशारे'

इस खिन्न हृदय को भी पूर्णता का आभास होने लगता है—सीमित वस्तु असीम का ज्ञान करने लगती है।

"मैं भूल गया मैं क्या था
जग मेरा भार लिये था
अब जग का भार लिये मैं
किसको कह दूँ निज गाथा ?"

सीमित स्वत्व से उठकर जब भावुक मन असीम में अपने आपको खो बैठता है तब साधारण जीवन की झांकी ही बदल जाती है। विचित्र भावनाओं से अनुभावित होकर यह मानव जन-मानव अथवा विश्व-मानव बन जाता है। जहां किसी असाधारण आनन्द का अनुभव होता है। हृदय का प्याला जब इस अनुपम आनन्द से भर जाता है तब अवश्य इससे छलकन बाहर गिरने लगती है। इसी छलकन को लोक में 'कविता' का नाम मिला है। स्वयं कवि 'बच्चन' ने कहीं व्यक्त किया है—

'मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना
मैं फूट पड़ा तुम कहते छन्द बनाना
क्यों कवि कह कर संसार मुझे अपनाये
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना'

इसी भाव को किसी और कवि ने प्राथमिक कवि की अभिव्यक्ति में यूँ स्पष्ट कहा है—

'जल कर चीख उठा वह कवि था'

यही भाव सम्भवतः आदि कवि बाल्मीकि के हृदय में उत्पन्न हुआ था। जब उनकी दृष्टि उस क्रोञ्च पक्षियों के जोड़े पर पड़ी जिनके आनन्द को एक निषाध के तीर ने भंग कर दिया था। उनके सुकोमल कवि हृदय का प्याला गूढानुभूति से भरकर छलकने लगा और इस उक्ति में अभिव्यक्त हुआ जो विश्व-साहित्य का आधार स्रोत बना—

'मा निषाध प्रतिष्ठां
त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकम वधीः
काममोहितम् ।।'

'हे व्याध ! काम से मोहित कौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को तूने मार डाला है, इसलिए अनन्त काल तक प्रतिष्ठा को प्राप्त न हो ।'

इसी भावाभिव्यक्ति का नाम साहित्य में कविता पड़ा । इस काव्यानन्द की अनुभूति कवि ही जान सकता है । जैसे योगी अपनी योग-साधना की सफलता का अनुभव केवल वही कर सकता है । अतः कविता केवल स्वान्तः सुखाय ही हुआ करती है । गूंगे को गुड खिलाकर उससे इसका स्वाद पूछा जाय तो वह बिना संकेत के व्यक्त नहीं कर सकता है ; केवल स्वयं ही इसकी मिठास का अनुभव करता है । यही बात कवि के आनन्दानुभव के विषय में कही जा सकती है ।

कवि तो विचारक अवश्य होता है । परन्तु उसके हृदय की कोमलता, गहराई और अनुभव एक दार्शनिक के हृदय की अपेक्षा कहीं अधिक और गूढ़ होती है । दार्शनिक विचारों को आमन्त्रण देता है । परन्तु विचार कवि को आमन्त्रित करते हैं । कवि में काव्य-प्रतिभा की स्वाभाविक सम्पत्ति मानो उपार्जित होती है । केवल इसे हिलाने की देर है कि यह निकल पड़ती है ।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सन्तकवि कबीरदास की वाणी से प्रभावित होकर अपनी गम्भीर वाणी का स्रोत बहाया । उनकी 'गीताञ्जली' के पद्य किस सहृदय को आप्लावित नहीं करते ! विचार के साथ भावना अभिव्यक्ति में आकर मर्मस्पर्शिनी बन जाती है, और यही भावाभिव्यञ्जना भिन्न-भिन्न प्रकार के स्रोतों में वह निकलती है। श्री सुमित्रानन्दनपन्त प्रकृति उपवन का पपीहा बन बैठा तो वैदिक-

साहित्य से अनुभावित श्री जयशंकरप्रसाद आधुनिक हिन्दी-साहित्य का महारथी। श्रीमती महादेवी वर्मा की वेदना, श्री रामकुमार वर्मा का सूक्ष्म-जगत में जीवन-निरीक्षण, श्री हरिवंशराय 'बच्चन' का हालावाद तथा यथार्थ जीवन-गायन, स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त का राष्ट्र-जागरण तथा श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का राष्ट्र-मानव के भाव आदि इन स्रोतों के उपयुक्त उदाहरण हो सकते हैं।

कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, जायश्री आदि कवि और महाकवि भी अपने-अपने विशेष भावों से अनुभावित होकर जन-मन के कवि बने थे। उनकी आत्माभिव्यक्ति साधारण जनता को आप्लावित कर गई और करती रही है। अतः यह काव्य प्रतिभा कवि की अपनी वस्तु है जिसका यथार्थ आस्वादन वही कर सकता है। लोक में इसका आदर हो अथवा किस सीमा तक हो, इन बातों से कवि का कोई सम्बन्ध नहीं। इस 'विक्षिप्त वीणा' के सम्बन्ध में भी इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

'कमल'

शान्ति-कुटीर,
77-द्राबीयार,
श्रीनगर-1 (कश्मीर)

अनुपम यह तम्बूर

अनुपम यह तम्बूर
हे विराट् ! हाथों से तेरे
बजता जग-सन्तूर

ज्ञान-कर्म के दो हाथों से
बाहर भीतर के श्वासों से
स्थावर जङ्गम भावरूप में

चलता है भरपूर।
अनुपम यह तम्बूर।।

कोयल की यह कूक मनोहर
काग कांय वह बनता दूबर
मिश्रित मनहर ध्वनि में कैसे

नाच रहा मन-शूर ।
अनुपम यह तम्बूर।।

बन बीहड़ में हरि केहरि यह
धाड़ रहे अरु दौड़ रहे यह
सर्व-जाति निस्तब्ध भाव में

बाज बजाते दूर ।
अनुपम यह तम्बूर ।।

जग के कोलाहल में स्वर है
व्यथा व्यथित-मन के निर्भर है
पलकों से चुपके से बहती

दग्ध निराशा क्रूर ।
अनुपम यह तम्बूर ।।

स्वर्निल भविष्य ध्वनिमय बजता
भूत भूत-धन-गौरव लजता
वर्तमान की चंचल छाया

उड़ता है कर्पूर ।
अनुपम यह तम्बूर ।।

फेनिल नीरधि निन्द्य नहीं है
घन-गर्जन का बिन्दु यही है
सिन्धु-बिन्दु का योग मापने

चलती है ध्वनि पूर ।
अनुपम यह तम्बूर ।।

हे विराट् ! हाथों से तेरे

बजता जग-सन्तूर ।
अनुपम यह तम्बूर ।।

□

उद्‌गार

वाणी की वीणा पर से
हृत्तार बजे जब मेरे
मेरे ही सुख दुःख के ये
जग से थे साफ इशारे।

अपने उर की पीड़ाएँ
दृग-जल से धोई मैंने
निज श्वासों के उल्लासों को
नभ में खोया मैंने।

मैंने यह कब जाना था
मेरे अन्तर में क्या है
आहों में गान भरा है
हंसी में रोद छिपा है।

मादकता मदिरा में है
कटुता में जीवन-रस है
मेरी टूटी वीणा में
झंकार भरी नस नस है।

मेरा हारिल

मेरा हिय उर्वरित हुआ है
कसक भरी कलनाओं से ।
मेरे दृग् भर-भर रहते हैं
मधुमय घन धाराओं से ।।

किन्तु, प्रिये ! अवसाद यहां है
क्या यह हिय, यह दृग् हैं अपने ?
जब जी चाहता है गाने को
भिद जाता है स्रावों से ।।

हारिल मेरा उड़ जाता है
प्रातः ही किन द्वारों से ।
सायं को अवतरित हुआ
आता है खिन्नागारों से ।।

निशा निमन्त्रित होने पर भी
दिन को विदा नहीं मिलती ।
दिवस आने पर न छूटती
नींद, निशा के जालों से ।।

□

मैं कौन हूँ

तारों में बस रहा हूँ,
हूँ चांद की किरण में ।
फूलों के क्यारियों की,
रहता हूँ मैं सुमन में ।।

दृग् बून्द मैं बना हूँ
प्यारे के प्रेम-रस में ।
सागर से दे रहा हूँ,
वर्षा की बून्द घन में ।।

लोगों के लोचनों से,
हूँ देखता स्वयं को।
खुश हो के कहकहों से,
रहता हूँ तुष्ट मन में ।।

दुःखियों के आह में हूँ,
हूँ बुज़िदलों के मन में ।
तो भी 'कमल' हूँ न्यारा,
बगलों के घोर बन में ।।

□

मैं

मैं उस बीणा की झंकार हूँ
जिसके तार सहसा टूट पडे हों ।

मैं उस रोदन का गीत हूँ
जो एक अबला के व्यथित हृदय से
फूट पड़ा हो ।

मैं उस प्रेयसी का प्रेम हूँ
जिसकी कोमल ग्रीवा
चकोरी की तरह
राकापति के उदय की प्रतीक्षा में
लुण्ठित-लतिका सी हुई हो ।

मैं उस पीड़ा का प्राण हूँ
जिसका उद्‌गम
एक व्यथित हृदय
से हुआ हो ।

मैं उस विद्यार्थी की विद्या हूँ
जो फल देने वाले वृक्ष की भान्ति

आतप, शीत, वर्षा, तथा बात में
शरदिन्दु (आचार्य) की प्रतीक्षा में
खड़ा है।

मैं उस जीवन की ज्योति हूँ
जो पथ पर खड़ा पथिक के
उत्साह को बड़ा कर उसे
अग्रसर होने की प्रेरणा करती है।

मैं उस श्रमिक के माथे पर के
स्वेद कण हूँ, जो प्रातः और
सायं की उदर-पूर्ति की
चिन्ता को वर्तमान के
श्रम में भूल बैठा हो।

□

देह में आत्मा यूँ ठहरा

घने अन्धेरे घट के भीतर
क्षिति पर दीप जला रखना,
उसके ऊपर पांच छिद्र का
घट उल्टा कर रख देना ।

घट के बाहर से छिद्रों पर
एक एक वस्तु रखना,
अबरख, वीणा, कस्तूरी अरु
रत्न व्यजन ठहरा देना ।

घट से छिद्रों को राह निकले
तेज-अंश से पृथक पृथक,
वस्तु ज्ञान जो होता उसको
देख विचारो फिर कहना ।

क्या यह ज्ञान रन्ध्र से मिलता
घट या मिट्टी बर्तन से ?
तेल से मिलता या सूती से ?
नहीं रुचिकर यह कहना ।

प्रति वस्तु है दीप का बाधक
इन से मान नहीं होता,
दीप-शिखा के आश्रय ही सब
देह में आत्मा यूं ठहरा ।।

जग-जुलाहा

है जग-जाल बुना ।
हे जुलाहे ! कैसे तूने,
मेरा जाल बुना !

ताना इसके पूर्वार्जित हैं,
बाना मेरे इह के कृत हैं,
झोड पडे कैसे अभिमत हैं,

कैसा शाल बुना !
है जग-जाल बुना ।।

रंग चढ़ा है कैसा सुन्दर,
खुब जाता है आँखों अन्दर,
चांद चमकता ज्यूं गिरिकन्दर,

क्या है दाम ? सुना !
है जग-जाल बुना ।।

कैसी किल्कारी है ऊपर !
मनहर सुखकर फबती तन पर,
श्याम रंगा है सुन्दर घन पर,

'जानकी'—जाल चुना !
है जग-जाल बुना ।।

□

तुम और मैं

तुम चन्द्र हो मैं हूँ छटा,
तुम श्याम मेघ अरु मैं घटा।

तुम कुसुम मैं हूँ गन्ध-वास,
तुम शरद् मैं हूँ चन्द्र-हास।

तुम गगन अरु मैं मेघ-माल,
तुम दिवस हो मैं सूर्य-बाल।

तुम हो निशि के निशा-नाथ,
मैं तारक-माल हूँ तेरे हाथ।

तुम विश्व-विजय मैं विजित मान,
तुम विश्व-केलि मैं कलित प्राण।

तुम हो प्रकाश अरु मैं विकास,
तुम हो विनाश अरु मैं विलास।

तुम दुग्ध हो मैं श्वेत अंश,
तुम मुग्ध मैं माधुर्य वंश।

तुम सिद्ध हो मैं साधना,
तुम योग हो मैं वञ्चना।

तुम शून्य हो मैं विश्व पूर्ण,
पर तव विना तू मैं अपूर्ण।
तुम रश्मि-जाल मैं ललित अंग,
तुम 'कमल' हो मैं रसिक भृंग।

□

विधि-गति

जीवन मेरा स्रोत नदी का
यूं ही बहता जाता है ।
कल्पनाएँ व्यर्थ हैं—तृण-कण
साथ में लेता जाता है ।।

इस पल तृण-कण साथ में रहते
उस पल छूटे जाते हैं ।
यूं ही हृत्तल कुरनाओं को
अन्तिम अञ्जली देता है ।।

श्रम से श्रमित हुआ इठलाता
तो भी श्रम ही गाता है ।
मौज यहीं है—बहते बहते,
बह कर बल पा जाता है ।।

नहीं पता है कहां ? किधर को
कौन बहा ले जाता है ?
अमल 'कमल' सृष्टि के सर में
देख यह चुप रह जाता है ।।

आंसू

आ ! हा ! आज उमड़ती नदिया
कैसा स्रोत बहाती
बहते बहते जीवन तल पर
शीतल ताल बजाती

आभास

हृदय स्थल से बहता झरना
अश्रु नदी में गिरता
गिर कर जीवन के आञ्चल को
किन ध्वनियों से भरता ?

अनुभव

मैं तो अंधयारी कुटिया में
जीवन-संग थी रोती
रोकर आंखें खोली देखा
बिखर पड़े हैं मोती

प्रत्यक्ष

ये तो आंसू-बून्द नहीं हैं
सुख-माला के मोती
जिनका अनुपम हार पहन कर
मैं हूँ सुख से सोती

परिणाम

□

कवि*

कवि है कौन सुनाओ ना

जीवन जिसका करुण-कहानी
अरुण-हृदय सा मतवाला,
तरल-तरंगें - उत्सुक यौवन
दिखता है जर्-जर बाना।
कवि है कौन सुनाओ ना

मन्द पड़ा है, पर चमकी है,
बादल से घेरा दिनकर है,
यौवन ही वृद्धामय जिसका
करवाता अभिनय नाना।
कवि है कौन सुनाओ ना

अस्ताचल से अस्त हुआ पर
उदयाचल में दीप्ति लही,

*'भावना के आलोक में
गूढ़ अभिव्यक्ति है कविता'

अन्तर्गत भावों को जग में
फिर फिर देता है ताना ।
कवि है कौन सुनाओ ना

खिलता है जो 'कमल' उसी में
भरता भानु-किरण है आज,
कल मृणाल-नायक बन उसके
दर पर धरता मरवाना ।
कवि है कौन सुनाओ ना

□

मन टूटा

यह मन टूटा टूटा·····
अब दिल की वह तार नहीं है
मीठी वह झंकार नहीं है
कोयल की यह कूक नहीं अब
भाग्य किसी का फूटा—यह मन·····

पिया गये तो हम भी गये हैं
वे न रहे तो हम न रहे हैं
उन बिन हमरा कौन कहां है
मन से मन है छूटा—यह मन·····

चलते चलते कदम न उठता
बैठ न बैठा जाता
प्यारे की धुन में इतराते
मौज न मन का लूटा—यह मन·····

पल भर भी जो वे नहीं आये
कोई भी सन्देसा लाये
'जानकि' जीवन आग बुझाये
प्रेम लगावे बूटा—यह मन·····

कौन गली अब जाऊँ

कौन गली अब जाऊ !

दुर्दिन के किस पथ पर आकर
प्यार बिछुड़ हो प्यार बनाकर
जीवन-मणि को बिकने निकला

किसके हाथ बिकाऊँ ?
कौन गली अब जाऊँ !

ढूंढ चला हूँ सब गलियन में
अंधेर मचा है जग के जन में
अपनी अपनी धुन के प्रेमी

किसको हाल बताऊँ ?
कौन गली अब जाऊँ !

थिरक थिरक कर रह जाता हूँ
पद पद पर पद पा जाता हूँ
मणि का भार लिये फिरता हूँ

अन्त अनन्त समाऊँ ?
कौन गली अब जाऊँ !

प्रम भरा है प्यार भरा है
जीवन का सञ्चार भरा है
प्रेमी के हित हार धरा है

कब उसको पहनाऊँ ?
कौन गलो अब जाऊँ !

दृग्-मोती हृत्तल से लाकर
प्यार से उनको सजा सजाकर
अनुपम हार बनाकर प्यारे !

किसको हार बनाऊँ ?
कौन गली अब जाऊँ !

प्यारो कोई प्यारा आये
प्यार भरा यह दिल बहलाये
प्रेम गली में दाम चुकाये

दाम से धाम चुकाऊँ
कौन गली अब जाऊँ !

जब ही दिल भी हिल जाते हैं
प्रेमी-साजन मिल जाते हैं
हिलमिल कर तब ही प्यारो !

मैं भूला, भूल बुलाऊँ
कौन गली अब जाऊँ !

□

कल्लोल

सुनाओ कुछ कल्लोल,
मोहन ! मन की बात कहूँ क्या—
यह जीवन अनमोल

सांझ हुआ तो पक्षी सारे
उड़ कर आये अपने द्वारे
कैसे न्यारे ! प्यारे, प्यारे

करने अपने बोल
सुनाओ कुछ कल्लोल।

अपने प्रियतम के गुण गाते
अपनी अपनी सेज सजाते
भीतर जाते, बाहर आते

अनुपम यह चण्डोल
सुनाओ कुछ कल्लोल।

दिन का उड़ना, लड़ना, भिड़ना
सायं का आपस में चिड़ना
गीत सुनाना चोंच हिलाना

शान्ति सुख का खोल
सुनाओ कुछ कल्लोल ।
चिड़ियों का यह रैन बसेरा
तेरा मेरा जैसा डेरा
ना जग मेरा, ना, जग तेरा
'जानकी'-जीवन तोल
सुनाओ कुछ कल्लोल ।

□

दुःखी हृदय

दुःखी हृदय को नहीं सताओ
यह आशाओं का अन्तर है।
इसके कण-कण में अन-बन है
इसका पल-पल मन्वन्तर है॥

करुणा इसकी व्यथा कहानी
व्यथित-व्यथा है इसकी रानी।
पीड़ित पलकों से गिरता है
जीवन-झरना अन्-अन्तर है॥

इसके मन में राज इसी का—
शून्य हृदय क्या साज किसी का ?
संशय-संगी इसको प्रतिपल
शंकित करता निर्-अन्तर है॥

शीत तप्तता 'कमल' कहां तक
सहन-शक्ति की परिधि में ला,
गौरव-गर्वित कर सकता है ?
मज्जित होकर ही अन्तर है॥

पर अब दुख में ही सुख इसको
खिलकर इसके उर में भय है।
निर्दय-नियति कहे देती है
कल ही इसमें फिर अन्तर है ।।

नवयुग से

खोल दे बन्धन मेरे अब ।

हे युगों की क्षुब्ध रेखा !
जीर्ण-शीर्ण विधीर्ण परिखा !
आज का उज्जवल दिखाकर

माप ले मैदान यह सब
खोल दे बन्धन मेरे अब ।

हथकड़ी हाथों पड़ी है
पैर में जंजीर भी है
चिर-विचारों की लिये हूँ

अञ्जलि, यह सिमट ले अब
खोल दे बन्धन मेरे अब ।

आज का यौवन, प्रतीक्षा
में पड़ा है पूर्ण भूका
कुछ मुखों में डालने को

मैं उदित हूँ, छोड़ दे अब
खोल दे बन्धन मेरे अब ।

कसक ही जीवन-कहानी
आज से मैंने है मानी
राग भावों की सुनाने

भावुकों से मौड मत अब
खोल दे बन्धन मेरे अब

उर की व्यथा

गाई नहीं है जाती
उर की व्यथा सम्हल कर।
देखी नहीं है जाती
घनमालिका उछल कर॥

नैनों से नीर बहता
उर से निकल निकल कर।
प्रेमी का हार बनते
दृग्-बिन्दु मोती बनकर॥

पाऊँ लुढ़क रहे हैं
हाथों में हथकड़ी सी।
सिर पर तुषार-बोझा
गलता है नीर बनकर॥

प्रेमी ! यह प्रेम मेरा
पागल का प्रेम पूरा।
हिय से निकल रहा है
पीड़ा का प्राण बनकर॥

सब ओर छा रहा है
यौवन का भार मेरा ।
वह झांकती है 'आशा'
हल्का सा भार बनकर ।।

उद्देश्य - हीन यौवन
यूँ ही ढुलक रहा है ।
आशा में यूँ निराशा
आश्वासती उबलकर ।।

निर्गन्ध है अवश्य पर
आभा 'कमल' की न्यारी ।
अलि-गण बता रहा है
मकरन्द-स्वाद सन कर ।।

पंकिल - जल - मग्न कमल

निर्झर

सिन्धु की मर्याद लख कर
मैं चली निज कूल खोने
क्षितिज के उस पार सोने
रुदन को उर में लिए ही,

मस्त के उद्‌गार भर कर
सिन्धु की मर्याद लख कर।

कौन साथी साथ मेरे
मैं अकेली माथ फेरे
चल रही, हिय में सम्हाले,

स्वप्न का संसार धर कर
सिन्धु की मर्यादा लख कर।

कौन मुझको पथ बताता
कौन किसके काम आता
एक पद पर दूसरा रख

हूं चली जाती ठिठर कर
सिन्धु की मर्याद लख कर।

एकान्त

बस बन्द हुआ सब मेला
अब मैं हूँ एक अकेला

जीवन उपवन के माली !
अब मैंने जी भर खेला

जग के सुख दुःख भी छूटे
जो नाते थे सब टूटे

विस्मृति ने निर्दय कर से
मन के मणिक सब लूटे।

मैं भूल गया मैं क्या था
जग मेरा भार लिये था

अब जग का भार लिये मैं
किसको कह दूँ निज गाथा।

□

विरहिन

वह सीता सी अशोक-वन में
कौन पड़ी विह्वल सी आज
वह दमयन्ती की छाया सो
नल से बिछुड़ गई है आज।

मरु-भूमि में दूर-दूर वह
क्या है कोई वृक्ष खड़ा!
जिसकी जीवन-ज्वाला में यह
आहों की आहुति है आज।

अन्तस्तल से ज्वाला उठकर
वक्षस्तल शीतल करती
ये पावस की बून्दें किसके
आञ्चल को भरती हैं आज।

पुष्प-लता वह वन में किसके
हित फूलों की भेंट लिये,
जीवन का सर्वस्व समर्पण
करने ललायित है आज।

सरिता की यह तरल-तरंगें
किसका अन्वेषण करतीं,
जो प्राणों के मोह को खोकर
नभ में उछल रही हैं आज।

चान्द अकेला तारागण में
मोहक छटक दिखाता है
भानु-किरण-वञ्चित हो बैठा
अलिदल ! 'कमल' यहां है आज।

□

परिवर्तन

आज का यह खेल क्या है !

कल सजा दुल्हा चला था
साज में यों सिर हिला था
आज दुल्हिन के बिना जीवन बिताना भान-सा है
आज का यह खेल क्या है !

भर रहा था मैं उमंगें
अम्बुधि में बन तरंगें
आज की प्रातः न जाने, क्यों बनाती वार-सा है
आज का यह खेल क्या है !

सो रहा था रैन को मैं
भूल कर सब चैन को मैं
आज उल्टा खेल रचकर, चैन चाहता चैन-सा है
आज का यह खेल क्या है !

□

आज भर आते नयन क्यों !

रंग रलियों में मज़े थे
खूब पलकों में सजे थे
आज हिय मेरा, न जाने, ढो रहा है भार सा क्यों
आज भर आते नयन क्यों !

भूल बैठा था भवन में
स्वत्व के सुन्दर सुमन में
अब निशा-नीरव मुझे, बन्धी बनाकर ले रहा क्यों
आज भर आते नयन क्यों ?

मैं सजाकर तान अपनी
ले रहा उस पार को भी
तारकों के लोक में निशिनाथ का आकार पर क्यों
आज भर आते नयन क्यों !

□

मृत्यु ही यह गान क्या है !

हो न जब तक श्याम काला
ढल न जाये दिन उजाला
प्रात अरु प्रातः समीरन—
मौज कुछ भाता नहीं है
मृत्यु ही यह गान क्या है !

शरद्-शशि जब आढ़ लेता
पल्लवों को जाड़ देता
शीत-मृत्यु को सहन कर,
सुरभि में बन जागता है
मृत्यु ही यह गान क्या है !

भावनाओं के भवन में
कल्पनाओं के वलय में
सो रहा मानव उठेगा
नियति का निस्तार यह है
मृत्यु ही यह गान क्या है !

□

मृत्यु है कैसा खिलौना !

भवन जब गिरता पुराना
फिर नया बनता सुहाना
ध्वंस में यों ही छिपा है, नवल का बनना बनाना
मृत्यु है कैसा खिलौना !

शरद्-शशि-आह्लाद इसमें
झगमगाना बाध. इसमें
यों बना देती पलक में, मृत्यु से अमरत्व बाना
मृत्यु है कैसा खिलौना !

मृत्यु में ही निहित जीवन
जर्जरित हो विदित उपवन
ज़िन्दगी के साथ में यह, भात में जैसे सलोना
मृत्यु है कैसा खिलौना

आ बहन ! दिल खोल रो लें

भूल कर सुख-साज सारे
दुःख के होकर दुलारे
खिन्न-मानव के हृदय का, आज हम कुछ भेद खोलें
आ बहन ! दिल खोल रो लें !

जो हुआ होकर हुआ है
नियति को किसने छुआ है !
कौन किसके साथ आया, कौन किसके साथ हो ले
आ बहन ! दिल खोल रो लें !

बैठ संवेदन कुटी में
दिन गुज़ारेंगे छुटी में
कसक-कंथा को पहन, अब वासना-भण्डार तोलें
आ बहन ! दिल खोल रो लें !

□

मैं बराती साज सजकर

ढो रहा है भार कितना
आज का उन्माद मेरा
भूल कर अभिमान अपना-चल रहा हूँ पांव रज कर
मैं बराती साज सजकर

मस्त मन माधुर्य में है
सभ्यता चातुर्य में है
पर न कह सकता है कोई, जल रहा उर ज्योति तजकर
मैं बराती साज सजकर

खो रहा हूँ स्वत्व को मैं
मोल चंचलत्व को मैं
पर यही चाञ्चल्य उर में, कर रहा है राज रज कर
मैं बराती साज सज कर

□

मत मुझे मजबूर कर दो

झूलने दो झूल पर ही
भावना-भव-कूल पर ही
मैं भी जानूं भूल क्या है, आंख में मत धूल भर दो
मत मुझे मजबूर कर दो

है धरा एकान्त में क्या !
जग बनाता भ्रान्त है क्या
भ्रान्ति में शान्ति न मिल जाये तो फिर मत शूल भर दो
मत मुझे मजबूर कर दो

मौज है मंझदार में ही
कंथ-कारागार मैं ही
छोड़ दो सब मोह मानव ! नियति में मत तूल भर दो
मत मुझे मजबूर कर दो

□

सुनहला घन सुख-भरा है

वर्ष का आगम निगम यह
कुछ खरा, खोटा भी कुछ है
पर हृदय की क्षुब्ध-वेदी पर मेरा मन-मद-भरा है
सुनहला घन सुख-भरा है

जल रही ज्वाला हृदय में
सांध्य बेला के उदय में
शून्य आहों में मेरी यह वाष्प उड़ता दृग-भरा है
सुनहला घन सुख-भरा है

लग रही शिव की समाधि
भंग घोले घन-अनादि
यों छिपा जाता है सरिता-मुख हमारा मन-भरा है
सुनहला घन सुख-भरा है

पर निराशा है कहीं क्या ?
शुभ्रता शुभ है नहीं क्या !
इस हृदय के निहित पट पर अन्तरित जीवन भरा है
सुनहला घन सुख-भरा है

□

मित्र को पत्र

बस !
इतना ही था प्यार सखे !

जाल नहीं जब बुन पाये थे
चिर परिचित से हम आये थे
चिर सहचर रह रह कर प्यारे
अब विरहानल धार सखे ! इतना···

यौवन-श्रम से तिनके लाये
हमने तुमने नीड़ बनाये
इन नीड़ों के अन्तर्हित में
बाहर भूले प्यार सखे ! इतना···

कोयल की वह कूक नहीं अब
सुनने में भी भूल हुई क्या !
कागों के कांय कांय में
दिन का होता वार सखे ! इतना···

वीणा के दो तार मिले थे
मिलकर पहली बार हिले थे

फिर भी क्या मस्ती से होगा
जीवन का उद्धार सखे ! इतना···

कोयल आई, पीले आये
घन भी अम्बर को नहलाये
इस उर में पर कब आयेगा
भूला सा वह प्यार, सखे !
बस !
इतना ही था प्यार सखे !

□

रक्षा-बन्धन

रक्षा - बन्धन के दो तार
बनाते मुझको हैं लाचार

सीमित करते हैं असीम का
मोहित करते निर्मोही को
योजित करते विद्रोही को

झंकृत वीणा के दो तार
बनाते सब को हैं लाचार

बहना ! बांधी राखी तूने
कर को आगे धारा मैंने
जोड़ा नाता तूने मैंने

कर में 'कमल' लिये है हार
बनाते तुझको भी लाचार

मानव मन तो धीर रहे कुछ
आशायें गम्भीर रहें कुछ
कल्पना लतिका शाखाएँ

उग आयेंगी फिर साकार
बनाते मुझको भी लाचार

□

जीवन-खेल

खेल जीवन का भला है
खो रहा मानव स्वयं ही

भावनाओं के भवन में
कल्पनाओं के कलप में
शून्य मानव खो रहा है

ज्योति जीवन की स्वयं ही
खो रहा मानव स्वयं ही

साध कोमल भेद निर्मल
सृष्टि की झंकार जलथल
मृदुल, मधु मुस्कान में पर

हार बैठा है स्वयं ही
खो रहा मानव स्वयं ही

एक बादल श्वेत कण है
दूसरा घन घोर का है
तीसरा बन तृष्टि का कण

धूल में मिलता स्वयं ही
खो रहा मानव स्वयं ही

□

प्रातः दृश्य

आनन्द हर तरफ से
सुख का पता नहीं है
सब ओर सर्वव्यापक
सब में समा रहा है
सागर, पहाड़, वन में
नदियों से बह रहा है
माला का जैसे धागा
दोनों से हो रहा है
शीतल पवन यह सारी
कानों में कह रही है
ध्वनि प्रणव की प्यारी
दुनिया में चल रही है
पेड़ों पे बन के कोयल
यह राग गा रही है
'गोविन्द नाम प्यारा'
संसार तार ही है
देखो यह पक्षी सारे
कलरव में कह रहे हैं
सुन पड़ता है प्रणव की

क्या राग गा रहे हैं !
कहते हैं जाग तुम भी
सोने में क्या धरा है
आलस्य घोर मोह के
तम में फंसा रहा है
आकाश में यह मण्डल
कैसा रचा हुआ है
पश्चिम में चांद कैसे
मन को हरा रहा है
कहता है 'बाग', माली !
कैसा फला हुआ है !
उठ ! जाग ! फूल चुन ले
यह काल जा रहा है
प्रभात का समय यह
सन्देश दे रहा है
है जान 'जानकी' में
तो क्यों भुला रहा है

□

क्या सुख भोगा इस जीवन से ?

मार काट और दौड़-धूप है
हत्याकाण्ड प्रवाह रंजित है
मद मात्सर्य ममत्व वेदना
चतुर्दिक चंचल कम्पन से
क्या सुख भोगा इस जीवन से ?

मन मलीन है तन विलीन है
स्वार्थमय संकट प्रवीण है
विषय-वासना नित नवीन है
झंझा चलती है बनठन से
क्या सुख भोगा इस जीवन से ?

रोग शोक और मृत्यु भयंकर
जन्म जरा फिरते हैं घर घर
मानस में चिर-दाह प्रचण्ड हो
जीवन झंकृत प्रतिपल घन से
क्या सुख भोगा इस जीवन से ?

□

जागरण भी और मिलन भी

बन सकेंगे क्या नियति में
जागरण भी
और मिलन भी।

क्षुब्ध रेखा के हुये टुकड़े
इधर का और उधर का
अम्बुधि में उठ गई लहरें
इधर की और उधर की
दीन मुख स्वाधीनता में है
इधर भी और उधर भी
फिर नहीं बनते नियति में
जागरण भी
और मिलन भी ॥१॥

एकता में पूर्णता है
स्वच्छता भी सम्पदा भी
भिन्नता में भेद का है
क्षोभ भी क्षुत्भावना भी
क्यों न मानव मानता है
संकलन भी सम्बलन भी

क्योंकि बनता यों नियति में
जागरण भी
और मिलन भी ।।२।।

दीन का दीवान बनना
जग न मुझसे मानता है
ह्रास करना दुःख का
संसार कैसे जानता है ?
आज के उन्माद में है
दासता भी दीनता भी
यों न बनते हैं नियति में
जागरण भी
और मिलन भी ।।३।।

कश्मीर में
बसन्त का आगमन

कोयल की यह धूम कहां से
क्या बसन्त आया है आज ?
चल सखि ! अलिदल के स्वागत को
निकलें सज कर अपने साज ।

पुष्प लताओं से वन - कुञ्जें
क्या पराग यह भेज रहीं
जो न्योता देती फिरती हैं
प्रकृति के आंगन में आज ?

बहते झरने, छम छम बादल
कल ही सूचित करते थे
राज स्थापित करने आयेंगे
जगती तल पे ऋतु - राज ।

वृक्ष विटप जर - झटित खड़े थे
कल ही लीन तपस्या में
क्या उनके तप सफल हुये जो
रंग नये भरते हैं आज ?

कलरव से दिक्कुञ्ज भरे हैं
सुरभि - स्रोत का सरल प्रवाह
मनरञ्जन करती आती जो
नटिनी - नूतनता है आज।

धरनी दारुण रूप छोड़ यों
दर पे अपना बाल निरख
जीवन-धन को पाकर सज-धज
हरियावल में आई आज।

लाल पीत औ नील श्वेत यह
रत्न - झड़ित भूषण पहने
लक्ष्मी भू - अवतरित हुई है
सम्पत्ति - सुमन सजाने आज।

आंगन यह कश्मीर प्रकृति का
सुन्दर सुमन विहंग-विटपी का
स्फुरित जन-मन, जड़-चेतन यह
तन्त्रित जन - तन्त्रों में आज।

कृषकों की इस कर्म - भूमि में
स्पन्दन मन्थन होते आज
बीजारोपन करने में भी
प्रकृति हाथ बटाती आज।

□

नया कश्मीर

द्रुम - दल विलसित, पंकज - विकसित
भानु - प्रतापित, वर्षा - व्यापित
हिम मित आच्छादित - अवलम्बित
नाना रूपित रूपों का
यह कश्मीर नया ।।

केसर कुसुमित, नाना पुष्पित
कृषि आकर्षित, फल प्रफुल्लित
कानन व्यापित, स्थापित, मानित,
नन्दन - कानन ईर्षित सा
यह कश्मीर नया ।।

कलरव कूजित, वन्य विभूषित
जल आराधित, नदियां नादित
सरोवराप्लावित औ कामित
नगरानन्दित ग्रामित क्या !
यह कश्मीर नया ।।

शत्रु - विमर्दित, मित्र - विवर्दित
भारत - रक्षित, जन मन हर्षित
हिन्दू - मुस्लिम - सिख हित वाञ्छित

शासन में जन - तन्त्रित वाह !
यह कश्मीर नया ।।

नाना योजित, विपदा त्याजित
समता भाजित, क्षमता साधित
पर - जन मन मोहित, आह्लादित
हर्षित, गर्वित, मर्मित आ !
यह कश्मीर नया ।।

चिर नूतन

चिरनूतन का राग सम्हल कर
गाओ कवि तुम, उर बहलाओ।
जीवन के अन्तरतम से फिर
अन्तरतम का राग सुनाओ॥
जग-जीवन का चित्रित-निर्झर
बहता है अह-निशि औ प्रतिपल।
पर जीवन की तपन - ज्वाल में
शान्ति का सहचर बन जाओ।
कर्म निटत जग, प्रगति - रहित है
मृग - तृष्णा का जाल बिछा है।
प्रगति का प्रेमी बन कर ही
जन - जीवन का कदम बढ़ाओ॥

□

बोल उठा

जीवन नैय्या डोल रही है
खेवनहारा बोल उठा ।

अब तक जो सोया था भूला
रात - दिवस का डाले झूला
अनायास एक लोल लहर से
अपना जीवन तोल उठा—

मेरी मुझको चिन्ता थोड़ी
तेरी थोड़ी, मेरी थोड़ी
चिन्ताओं के चंगुल में ही
चिन्तित चिन्ता खोल उठा—

यों ही बोली बोल रहा था
यों ही झोली खोल रहा था
पर अब बोली झोली में धर
झोली सिर पर डोल उठा—

मेरा साथी मुझे न भाता
मैं हूँ रात दिवस का माता
अब तो साथी का साथी बन
जीवन सारा खौल उठा—

मेरा बोझा मेरे सिर पर
तेरा बोझा तेरे सिर पर
अब तो सारा बोझा ढोकर
बार बराबर बोल उठा—

जाना जो, जग जाना मैंने
जाना जो था, जाना मैंने
जाना जाने में हो जोबन
मेरा मुझ से बोल उठा—
खेवनहारा
बोल
उठा !

□

यह न पूछो

यह न पूछो किसलिए संसार बढ़ता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए परिवार बढ़ता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए व्यवहार बढ़ता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए विस्तार बढ़ता जा रहा है

संसार में परिवार का व्यवहार ही विस्तार है।

यह न पूछो किसलिए आचार घटता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए आधार घटता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए आकार घटता जा रहा है
यह न पूछो किसलिए उपकार घटता जा रहा है

आचार में आधार का आकार ही उपकार है।

यह न पूछो कौन किसके काम आता है जगत में
यह न पूछो कौन किसका दाम पाता है जगत में
यह न पूछो कौन किससे नाम पाता है जगत में
यह न पूछो कौन किस में राम पाता है जगत में

काम के उस दाम का यह नाम ही वह राम है।

यह न पूछो किस तरह अभिमान बढ़ता है जगत में
यह न पूछो किस तरह अज्ञान बढ़ता है जगत में
यह न पूछो किस तरह विज्ञान बढ़ता है जगत में
यह न पूछो किस तरह सुज्ञान बढ़ता है जगत में

अभिमान में अज्ञान का विज्ञान ही सुज्ञान है।

□

भारत दिवस

स्वप्नों का पूरा हो जाना
अरमानों का भी मिल जाना
देश विभूति में खिल जाना
भारत हमें बताता आज

अरे ठहर कर चेत करो तुम
अरे सहम कर सोच करो तुम
तब का अब का भेद सुझाकर
भारत हमें बताता आज

भारत - दिवस मनाने आये
बच्चे - बूढ़े - युवक सारे
पर इसकी रक्षा में रहना
भारत हमें बताता आज

वीर जवाहर सच्चे नेता
पञ्चशील से बने विजेता
अनुभूति के चित्र सजाकर
भारत हमें बताता आज

कांटों के पथ पर चल चलकर
देश चला सरिता के बल पर

सुगढ़ सुदृढ़ गंभीर वेश धर
भारत हमें बताता आज

युग ने चरण उड़ाये भू - पर
एक एक कर उन्नति पथ पर
भाखड़ा, मीट्यर और दामोदर
भारत हमें बताता आज

राष्ट्रपिता के आदेशों पर
देश चला, और चलता रहकर
राम - राज्य के स्वप्न सुयशकर
भारत हमें सुझाता आज

आज बंटा जग दो टोली में
रूस अमेरिका की होली में
बीच बना है भीत जवाहर
भारत हमें बताता आज

नदिया नाले सर और सागर
मौन वनस्पति वन्य और नागर
नभ-चर खग-चर हिल-मिल गाते
भारत हमें बताता आज

□

स्वतन्त्र भारत और हम

भारत का क्या गान करें हम
यदि हम में वह शक्ति नहीं तो
भारत से क्या दान करें हम

जन - मन को गण - मन में लाना
जन जीवन अनुशासन पाना
यदि हम में वह ज्ञान नहीं तो
भारत से क्या चाव करें हम

देश देश के नर नारी में
ग्राम ग्राम और वनचारी में
यदि समता का भाव नहीं तो
भारत का क्या ध्यान धरें हम

भाषा - भाषाओं में अन्तर
पंजाबी, हिन्दी, उर्दू कर
तमिल तेलगो एक न हो तो
भारत में क्या शान भरें हम

वैज्ञानिक आगे बढ़ता है
अन्तरिक्ष से भी अडता है

यदि हम में वह होड़ नहीं तो
भारत में क्या मान करें हम

सत्य, शील और प्रेम, वीरता
चतुराई, विज्ञान और दृढ़ता
यदि इनसे वह धैर्य नहीं तो
भारत से क्या धैर्य धरें हम

भारत बढ़ता आगे आगे
साथ साथ में हम भी जागें
भारत हम हैं, हम भारत हैं
भारत से यह प्यार करें हम
भारत का यह मान करें हम

□

मस्ताने

ज़रूरत है नहीं हमको किसी बंगले अटारी की,
किसी निर्जन जगह में चैन होती है फकीरी की।

जो मस्ताने हैं ठहरे हम नहीं हाजत हमें घर की,
हमारा घर तो दुनिया है नहीं हाजत घराने की।

कहीं से आ के बैठे हैं कहीं जाना अभी होगा,
कमर में कस लंगोटी हाथ में ही धुन है सोटे की।

चलें जिस ओर भी जग में नज़र में खुम चढ़ा मय का,
अज़ल में दर - ब - दर फिरते हैं ढूंढ़े लय दुलारे की।

जो कोई यों सताने आये हमको तो नहीं परवाह,
हमें आदत है खुद को भूलने की और भुलाने की।

जो ठहरें रात भर यां पर, तो वह भी दिन ही होता है,
न है बिस्तर न है बोरी, हमें तो बन की बेटी है।

खुदी के शाह हैं यां पर, खुदी है घर, खुदी बिस्तर,
खुदी के झंझटों से दूर, खुद में धुन समाने की।

कमण्डल प्रेम - जल से भर दिया है प्रम - सागर से,
हमें अब ठेकदारी खुद है पीने की पिलाने की ।

पड़ी यां कुछ नहीं हम को है सैरों की सपाटों की,
कि हम हैं सैरे - दरिया खुद, पहाड़ों के चट्टानों की ।

नहीं दफ्तर हमें कोई न दुकान् है न पटवारी,
हमें बस 'जानकी-जीवन' पड़ी है ठेकादारी की ।

□

मस्ती में झूमता हूँ

हस्ती को देख अपनी मस्ती में झूमता हूँ
प्यारे को देख प्यारे में मस्त हो रहा हूँ
काफूर है यह दुनिया भरपूर में हूँ बाकी
भरपूर मय यह पीकर मस्ती में झूमता हूँ
लाया रिझा के मैंने प्यारे को प्यारा करके
अब प्यार देख उसका मस्ती में झूमता हूँ
सब बाग़ ढूण्ड छोड़े चमनों की देख खुशबू
खुशबू में उसकी मिलकर मस्ती में झूमता हूँ
ना 'जानकी' रहा अब नहीं रूप कुछ है मेरा
मस्ती में मस्त होकर मस्ती में झूमता हूँ

□

उठ कर सवेरे

हे चिद्भानु ! प्रकाश
इस प्रातः को मल हर मेरे,
कर लो पाप विनाश।

निशि का कलंक छाया था जो
रवि किरणों ने कुम्हलाया जो

मन का मैल धुलाने मेरे
दिनकर ! आ, अविनाश
कर लो पाप विनाश।

रात अन्धेरी, मोह पड़ा था
मैं भी मन में मून्द पड़ा था

अब उजाला कर ले प्यार
मत कर मुझे हताश !
कर लो पाप विनाश !

उज्जवल मुख है तेरा सुन्दर
चमको मेरे मन के अन्दर

सुख-कर ! दुःख हर मेरे सारे
काटो यम का पाश
कर लो पाप विनाश।

जीवन सर में 'कमल' खिला है
तेरे से ही हरा भरा है

खिल कर इसे खिलाने प्यारे
आओ आत्म-प्रकाश
कर लो पाप विनाश ।

मस्त यौवन

चुपके से उस खिड़की से
वह चन्द्र किरण सी आई
वह कौन विमल-व्रत शीला
अब मुझसे पगने आई

"बाले ! मत आ रहने दे
मुझको मेरी मस्ती में
कुछ ठौर यहां भी है क्या
मत देख मेरी परछाई

तुम चन्द्र-किरण उज्जवल हो
मैं मस्त निराला तम हूँ
तुम देख सकोगी मुझ में
पर दूर मेरी गहराई

मेरा परिचय ही मैं हूँ
बन कर बिगड़ा करता हूँ
हट कर भी डटने पर ही
है ख्यात मेरी चतुराई

"यौवन मद मस्त न हो तू
अब मेरी बारी आई

माता के आञ्चल से चल
निज अञ्जलि देने आई

बालक थे - अब यौवन में
मैं तुझ से हिल-मिल गाऊँ
जीवन की झंकृत वीणा
के तार बजाने आई

मैं सोची—हो एकाकी
मैं तेरा दिल बहलाऊँ
तेरा दिल बस कर मुझ में
मैं तुझ में बसने आई"

"बस कर ! मत आगे बढ़ तू
फिर अपनी राह लेकर जा
'लो द्वार खुलाया है'— जो"
माता की ममता आई

"युवक निष्ठुर मत बन तू
मैं भी यौवन मद - माती
अम्बर में घर होकर भी
तेरे हित निज हिय लाई

गाऊँगी निज गाथा को
पर हाथ पकड़ लूँ तेरा
अबला हूँ—सबल युवक से
यों होगा रैन बसेरा"

"हैं ! अबला तुम क्या बाले !
अबला का बल क्या मैं हूँ !
मैं भी क्या इस जीवन में
कुछ तेरा काम सम्हालूँ ?"

"हां ! काम सम्हल जायेगा
तेरा भी कुछ—मेरा भी
जीवन - नौका को खेऊँ
जीवन-संगिनी हो तेरी ।।"

□

प्रेम-विहार

'किन उमंगों से भरा है, आज यह सुकुमार,
सोचने माता लगी यह बात बारम्बार ।
हो रही भीती मुझे या, सत्य का है सार,
मन्दता में मृदुलता होने लगी मिस्मार ।

किसलिये, बालक ! तुम्हारा मधुर वह सञ्चार,
हो रहा है मन्द ? मादकता बड़ाती भार ?
कौन आया है तुझे शिक्षा पढ़ाने आज ?
खो रहे हो जो अभी से शिष्टता की लाज ?

"बस, नहीं बकवाद कर, है मौन रहना ठीक ।"
यों वचन लाने लगा जिह्वा पे बालक अलीक ।।
गर्व से ऊँचा उठाने सिर लगा यौवन ।
प्रेमिका के अभ्र से अब ढक गया उपवन ।।

शरद् के सौन्दर्य से ऊजड़ बना उद्यान ।
शरद् - शशि, आह्लाद से ही खेंच लेता प्राण ।।
पर नहीं सौन्दर्य का होता कभी है ह्रास ।
मद - भरा यौवन जगत में बन रहा उल्लास ।।

गृह बना युवक लगा रहने युवति के संग ।
भूलकर ममता पुरानी, अब नई उमंग ।।
ठान कर, ठुकरा दिये हैं असभ्य सब आचार ।
सभ्यता के शिखर का होने लगा सञ्चार ।।

मौज में दोनों, नहीं आनन्द का है पार।
अम्बुधि की लोल लहरों में न पारावार॥
कब न यौवन भूल बैठा स्वप्न का आकार।
आन कर यों ही पड़ा है पास ही मंझधार॥

मञ्जुता में मोद था यौवन बना अब डीठ।
मृदुलता में गर्म था सावन फिरा अब पीठ॥
अब न वह किल्कारियां, वह मोद, वह आनन्द।
मन्द पड़ते दीप के किल्लोल होते वन्द॥

अब लगी है गेह के गंभीरता की साध।
कल्पना के कूल पर बनने लगा प्रसाद॥
भावनायें भाग कर आईं रहीं हैं संग।
कामना के कुञ्ज में रहने लगा अनंग॥

□

शान्ति पाठ

सब हों सुखी सुजान
सब पीड़ा - रहित प्राण
सब हों भद्र समान
प्रभु ! दुःख दूर कीजिये।
ओं शान्ति शान्ति शान्ति॥

□

कवि परिचय

श्री जानकीनाथ कौल 'कमल', डी० ए० वी० इन्स्टिट्यूट, जवाहरनगर, श्रीनगर (कश्मीर) के भूतपूर्व अध्यापक संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी साहित्यों में विशेष रुचि रखते हैं। साधारण तथा विशेष विषयों का अध्यापन सरल तथा सुन्दर ढंग से करते रहे हैं। व्यवसाय कीं अपेक्षा विनोद के लिए ही शिक्षा में डिगरियां प्राप्त कीं। कश्मीर विश्वविद्यालय से 1950 में बी० टी० पास किया। फिर 1965 में पचास वर्ष की आयु में अपने सुपुत्र के साथ होड से संस्कृत में एम० ए० की डिगरी पाई।

दार्शनिक विचारों का व्यक्ति होने से वेदान्त दर्शन तथा कश्मीर शैव दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन इनका प्रिय विषय रहा है। कश्मीरी, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में कविताएँ और लेख लिखते रहे हैं जो देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। कश्मीरी कविताओं की एक पुस्तक 'श्रद्धा-पोष', हिन्दी टीका सहित 'मुकुन्दमाला एवं अन्य स्तोत्र-रत्न' तथा अन्य और पुस्तिकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी में 'विक्षिप्त वीणा' आपके हाथों में है।

हमारे प्रकाशन

आलोचना साहित्य

कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु	राज रैना
मति मन्थन	डा० गंगादत्त

लोक साहित्य

डोगरी लोक गीत (संकलन तथा समीक्षा)	डा० ओम प्रकाश गुप्त

कथा साहित्य

काला आदमी	डा० शकील-उर-रहमान
न टूटने वाले पंख	अशोक जेरथ
तड़पते पंछी	इन्द्रा पेशन
दहकते अंगारे	क्षेमलता बखलू
दुखियारी	नरेन्द्र शर्मा
सौग़ात	अवतार कृष्ण राज़दान
अनुराग-विराग	डा० गंगादत्त

हास्य नाटक

आज का हातिमताई	आफ़ाक अहमद

कविता साहित्य

बयार के पंखों में	निर्मल विनोद
सरगम	सुदर्शन पानीपती
विक्षिप्त वीणा	जानकीनाथ कौल

सीमान्त प्रकाशन
९२२, कूचा रूहेला खाँ, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२